Advanced International Journal of Multidisciplinary Research
E-ISSN: 2584-0487
editor@aijmr.com
Volume 4, Issue 5, September-October 2026
CrossRef DOI: 10.62127/aijmr.2026.v04i05.1525

डॉ. नारायण दाश के कथा-संग्रह गङ्गे! च यमुने चैव का संक्षिप्त परिचय

विकास सिंह, डॉ. वन्दना शर्मा

शोधार्थी, शोध निर्देशिका

नारायण दाश समकालीन संस्कृत लघुकथा साहित्याकाश में नवोन्मेषिनी प्रतिभा संपन्न एक उदीयमान नक्षत्र है। उनका पहला कथासंग्रह गङ्गे! च यमुने चैव शीर्षक से प्रकाशित है जिसके नवीन कथाशिल्प को समकालिक साहित्य जगत् में प्रशस्य स्थान प्राप्त है। इस संग्रह में भाव और कला पक्ष दोनों में समान रूप से आधुनिकता द्योतित है। उनकी कथाओं में समकालीन मानव समाज के आदर्श एवं यथार्थ कल्पना एवं सत्य भाव एवं बुद्धिपरक विसंगतियों को विचारात्मक पृष्ठभूमि में अभिव्यक्त किया गया है।

इस संग्रह का नाम करण 7वीं कथा के आधार पर किया गया है। इस कथा का शीर्षक या कथा संग्रह का शीर्षक एक प्रसिद्ध श्लोकांश है जो हर भारतीय का हर पुण्य कार्य का संकल्प में पहले उच्चारित होता है। पुरा श्लोक है-

गङ्गे! च यमुने! चैव गोदावरि! सरस्वति!
नर्मदे! सिन्धु! कावेरि! जलेऽस्मिन् सन्निधि भव ॥

सचमुच यहां उदात्त महाभारतीय भावना का झलक दिख रहा है। क्योंकि जब कोई भी भारतीय भले ही वह अपने गांव का तलाव में नहा रहा है, परन्तु वह मन ही मन भारत के सभी नद नदियों का आवाहन करता है। देश की मिट्टी को, जल को, पत्थर को वह अपने मनन के मन्त्र से देव वना देता है।

प्रस्तुत कथा-संग्रह में वर्तमान समय की अनेक समस्याओं का सटीक भावात्मक क्रिया-प्रतिक्रियापरक रूपायन किया गया है। जातिप्रथा, दहेजप्रथा, भ्रष्टाचार, दादागिरी, दरिद्रता, विज्ञान-भयावहता, छल-कपट, बलात्कार, अत्याचार, हनन आदि अनेकानेक सामाजिक समस्याओं को लेखक ने भावपूर्ण स्वर प्रदान किया है। कथा गङ्गे च यमुने चैव में उच्च भावों का उद्बोधन है, देश, समाज और धर्म के प्रति लाभदायक दृष्टि है, मानव चरित्र को उन्नत करने योग्य सामग्री है। भारतीय मूल का नायक स्वदेश की उदात्त भावनाओं से अभिप्रेरित होकर जीवन के अन्तिम चरण में भारत वापस आकर समाप्तप्राय अपने सपनों की आदर्श एवं पावन भारतीय संस्कृति का अन्वेषण करता है। किन्तु क्रम वर्धमान वैदेशिक संस्कृति तथा अतीत की मधुर स्मृतियों की धूल-धूसरता से अत्यन्त अभिशप्त होता है। अन्ततः भागीरथी के तट पर परमात्मा के प्रीत्यर्थ जीवन-निर्वाह का लक्ष्य लेने वाले प्रातः स्नान परायण भक्तों की आध्यात्मिक स्वर-लहरियों से आह्लादित होता है। प्रवृत्ति के पश्चात् निवृत्ति का क्रम आता है। इसी क्रम में लेखक

Advanced International Journal of Multidisciplinary Research
E-ISSN: 2584-0487
editor@aijmr.com
Volume 4, Issue 5, September-October 2026
CrossRef DOI: 10.62127/aijmr.2026.v04i05.1525

परिवार, भोग और मोह में आसक्त जीवन में प्रवृत्त रहते हुए अन्त में निवृत्ति-मार्ग का अनुसरण कर, सब त्यागकर स्वदेश प्रस्थान करता है। बाल्यकाल की मधुर स्मृतियाँ तथा संस्कार मृत्युपर्यन्त व्यक्ति के अवचेतन में समाविष्ट रहते हुए अभिप्रेरित करते हैं। समय की परिवर्तनशील धारा के परिणामस्वरूप लेखक देखता है कि यहाँ गाँव की गलियाँ नहीं, घर का टूटा आंगन नहीं, सखा-सहोदर नहीं, जीवन की सरलता नहीं, आनन्द नहीं, यहाँ तो न्यायालय-आरक्षी है, चिन्ता, प्राणहीनता और उदासीनता है। शिक्षालयों में वृद्ध शिक्षक अंग्रेजी सीखा रहे हैं। आतिथ्यभाव का अभाव है। लेखक को रात्रियापनार्थ कहीं कोई स्थान उपलब्ध नहीं हो पाता।

वाल्मीकिः कथा में जातिप्रथा तथा पारिवारिक मूल्यों के मध्य व्यक्तिगत तथा सामाजिक संघर्ष झेलते प्रेमियों का मार्मिक चित्रण है। कथा का आरम्भ वातावरणीय वर्णन से हुआ है। वर्षा या मेघ सदा से ही साहित्य में भावोद्दीपक के रूप में प्रयुक्त होते रहे हैं। यहाँ भी वर्षा की आर्द्रता से संवेदनशील अलका के अन्तःस्थल में अनेक भावधाराएँ आलोडित होती हुई अतीत की स्मृतियों को मानस पटल पर उद्भावित करती हैं। संस्कृत-साहित्य अपनी शृंगारिकता के लिए प्रसिद्ध रहा है। प्रेममय से मेघदूत का अध्ययन करते समय ही चिकित्सिका अलका के हृदय में प्रथमतः प्रेम-बेल अंकुरित होती है। यद्यपि प्रेममय के विचार से यह प्रेम-बेल कुमारसम्भवम् के संयोग-शृंगार वर्णन के अध्ययनकाल में अंकुरित हुई थी। किन्तु संयोग की अपेक्षा वियोग का प्रभाव अधिक स्थायी होता है, अपनी भाव-कल्पना में अलका प्रेममय को अभिशप्त यक्ष तथा स्वयं को उसी की विरहिणी प्रिया स्वीकारती है। प्रेममय अपना वास्तविक परिचय छिपाते हुए विश्वासघात करता है। जब अलका को प्रेममय के हरिजन होने का ज्ञान होता है, तब वह प्रेममय के विश्वासघात से विचलित नहीं होती हुई अपनी आदर्शमयी भावनाओं के प्रति पूर्ण समर्पण को प्रमाणित करती और समस्त पारिवारिक, सामाजिक विरोध, बाधाओं को तोड़ती हुई उससे विवाह करती है।

कथा में प्रेममय के पालक, पोषक एवं संरक्षक पं. चतुर्भुज द्विवेदी के उदात्त विचारों तथा कार्यों का प्रकाशन हुआ है। ब्राह्मण होते हुए भी वह एक हरिजन बालक को पितृवत् स्नेह प्रदान करते हैं। विवाहोपरान्त प्रेममय समाज के अनेकानेक आक्षेपों, उपहासों को सहन करते हुए एक बार हरिजनों के सेवासदन तथा विद्यामन्दिर के उद्घाटन समारोह में क्रुद्ध भीड़ के प्रहारों का शिकार होता है। द्विवेदी जी प्रेममय की रक्षा करते हुए स्वयं आहत होकर चिकित्सालय पहुँचते हैं। एक आदर्श प्रेमिका, श्रेष्ठ पत्नी और कर्तव्यपरायण चिकित्सिका अलका वहाँ द्विवेदी जी को तन-मन से सेवा करती हुई समाज की ऐसी विरोधी विचारधारा पर प्रश्न करती है जिसका उत्तर देते हुये द्विवेदी जी कहते हैं- तव पिता प्रायो वसिष्ठः ब्राह्मणः। अहं ब्राह्मणोऽपि वाल्मीकिः। अयोध्यायाः राजपुरोहितवसिष्ठस्य सम्मतिं विना राजधर्मरक्षणनाम्ना मर्यादापुरुषोत्तमः रामचन्द्रः सीतायाः अग्निपरीक्षां कृत्वापि तां पतितामस्पृश्यामिति जुगुप्स्य निर्वास्य अरण्यं नाप्रेरयत्। पुनः तां पतिपरित्यक्तां सीतां ब्राह्मणो वाल्मीकिः निजकोले न आनेष्यत् तदा रामायणरचनं न समभविष्यत्। अस्माकं समाजे नैके ब्राह्मणाः। तेषु कोऽपि वसिष्ठः कश्च वाल्मीकिः।

कथा कविप्रतिभा में मानव-मन की अभ्यासपरायणता, संस्काररूपता पर मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। साहित्य हमें जीवन और जगत् में अधिकाधिक व्यापक रूप से गहराई तक ले जाता है। मनोवैज्ञानिक कथा की यह विशेषता होती है कि हम पात्र के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं और उसके मस्तिष्क में निवास करते हैं। पाठक पात्र के मानसिक अनुभवों में सीधे सम्मिलित हो जाता है। इस कथा में हम कवयित्री नीरजा के मन की यात्रा करते हैं। नीरजा नित्य गृह-कार्य के साथ-साथ कविकर्म में निरतए छोटे-छोटे अनुभवों के साथ साहित्य-पथ पर

Advanced International Journal of Multidisciplinary Research
E-ISSN: 2584-0487
editor@aijmr.com
Volume 4, Issue 5, September-October 2026
CrossRef DOI: 10.62127/aijmr.2026.v04i05.1525

अग्रसर है। पति के सहयोग और अपनी प्रतिभा के आधार पर सफल हो विपुल साधनसुलभ विशाल भवन में निवास करती है, जहाँ अवकाश होने पर भी संस्कारगत रूढ़ियों के कारण साहित्य-रचना अवरुद्ध हो जाती है। सुखद संयोग वश विपरीत-सी प्रतीत होने वाली परिस्थितियों में कार्यव्यस्तता के साथ-साथ साहित्य-रचना भी प्रारम्भ हो जाती है। परिणाम में अनुकूल और सार्थक परिस्थितियों का प्रतिकूल-सा प्रतीत होना ही कथा में चमत्कार का सृजन करता है। यथा- शाटिकां किञ्चिदुन्नम्य, वस्त्राञ्चलं कट्यां वेष्टयित्वा सा पाकशालायां प्रविष्टा। अस्मिन् नूतनगृहे सा प्रथमवारं रन्धनगृहे पादं दत्तवती। चतुर्दिक्षु सा नेत्रं प्रासारयत्। सेवकेन अन्न-सूप-व्यञ्जनार्थं सज्जितमासीत्। दीर्घं निःश्वस्य नीरजा कार्ये मग्ना। जलनालिकामुन्मोच्य पेषकं चालितवती। धीरं जलधारं दृष्ट्वा जलयन्त्रं समचालयत्। क्षणेन तण्डुलपाचक-व्यञ्जनपाचक-पेषक-जलनालिका-जलोत्तलनयन्त्राणां मिलितयन्त्रसङ्गीतं वायुमण्डले उद्घोषितम्। तस्याः गमने धावने, रन्धनसाधनानाम् उच्चनादे, रन्धनगृहस्य वातावरणं कदा नृत्यगीतव्यस्तमञ्चमिव, कदाचिद् घोरघर्घरधूमपरिवेष्टितयुद्धक्षेत्रमिव प्रतीयते स्म। साक्षात् तस्मिन् समये तस्मिन् कोलाहले, धावने गमने, धूमाच्छन्ननेत्रव्यथायां, शुष्ककाशेषु नीरजा अपश्यत्, तस्याः परिचितापरिचितानि, स्वल्पहासरोदनभराणि कानिचन मुखानि। एतानि एव सा प्रतीक्षते स्म दीर्घदिनेभ्यः। सा स्तब्धा जाता। तानि मूर्त्तिमन्ति किमपि कथयितुं व्याकुलीभूय अग्रे आगच्छन्ति स्म नीरजायाः समीपे। पुनः पुत्रहरा माता इव धावन्ती गच्छति स्म नीरजायारू सत्ता आनन्देन। धावित्वा सा कर्गजं लेखनीं च स्वीकृत्यए शाकत्वचानि हस्ते मार्जयित्वा तत्र अध उपाविशन्ती नीरजा, उपरि आगतान् भावावेशान् रूपं ददाति स्वलेखन्या। तस्याः चतुःपार्श्वस्थघारघर्घरपरिवेशः तस्याः कृते निःशब्दायते स्म। छिन्नछत्ररन्धनगृहं नेत्रसम्मुखाददृश्यं भवति स्म। शब्दानां पृथिवीतः सत्ता तस्याः डयते स्म निःशब्दनभसं प्रति तस्याः स्वरचितसाम्राज्यं प्रति, यत्र कविरेव स्रष्टा द्रष्टा, विधाता च। व्यञ्जनस्य सूपस्य वा एकः तीव्रो दग्धवासः प्रस्फुरति स्म क्रमशो रन्धनगृहस्य सम्पूर्णवातावरणे।

कथा गड्.गे च यमुने चैव में उच्च-भावों का उद्बोधन है, देश, समाज और धर्म के प्रति लाभदायक दृष्टि है, मानव-चरित्र को उन्नत करने योग्य सामग्री है। भारतीय मूल का नायक स्वदेश की उदात्त भावनाओं से अभिप्रेरित होकर जीवन के अन्तिम चरण में भारत वापस आकर समाप्तप्राय अपने सपनों की आदर्श एवं पावन भारतीय संस्कृति का अन्वेषण करता है। किन्तु क्रम वर्धमान वैदेशिक संस्कृति तथा अतीत की मधुर स्मृतियों की धूल-धूसरता से अत्यन्त अभिशप्त होता है। अन्ततः भागीरथी के तट परए परमात्मा के प्रीत्यर्थ जीवन-निर्वाह का लक्ष्य लेने वाले प्रातः.स्नान परायण भक्तों की आध्यात्मिक स्वर लहरियों से आह्लादित होता है। प्रवृत्ति के पश्चात् निवृत्ति का क्रम आता है। इसी क्रम में लेखक परिवार भोग और मोह में आसक्त जीवन में प्रवृत्त रहते हुए अन्त में निवृत्ति मार्ग का अनुसरण कर सब त्यागकर स्वदेश प्रस्थान करता है। बाल्यकाल की मधुर स्मृतियाँ तथा संस्कार मृत्युपर्यन्त व्यक्ति के अवचेतन में समाविष्ट रहते हुए अभिप्रेरित करते हैं। समय की परिवर्तनशील धारा के परिणामस्वरूप लेखक देखता है कि यहाँ गाँव की गलियाँ नहीं, घर का टूटा आंगन नहीं, सखा-सहोदर नहीं, जीवन की सरलता नहीं, आनन्द नहीं, यहाँ तो न्यायालय-आरक्षी है, चिन्ता, प्राणहीनता और उदासीनता है। शिक्षालयों में वृद्ध शिक्षक अंग्रेजी सीखा रहे हैं। आतिथ्यभाव का अभाव है। लेखक को रात्रियापनार्थ कहीं कोई स्थान उपलब्ध नहीं हो पाता। इसका मार्मिक वर्णन दर्शनीय है- अस्ताचलगामिसूर्यस्य स्वर्णकिरणाः पश्चिमदिग्भागे द्रुतबिलम्बिताः। यावद् रात्रिनिवासविषये अहं न चिन्तितवान्। भद्रजनमिव दृश्यमानं कञ्चन जनं पृष्टवान् अहमत्र रात्रा स्थातुं शक्नोमि वाघ् स भद्रजनः पादात् शीर्षं यावत् निरीक्ष्य उदत्तरयत् अत्र स्थानं नास्ति भो! अग्रे पश्यतु! एवं पञ्चस्थानेभ्यः प्रत्यागच्छन् स्मृतवान् यत्, ग्रामे एका धर्मशाला निर्मिता भवति स्म। तत्र गत्वा सर्वं दृष्ट्वा अहं निश्चलो जातः। तत्र सुरासुन्दरीणां वन्या प्रवहति इति

Advanced International Journal of Multidisciplinary Research
E-ISSN: 2584-0487
editor@aijmr.com
Volume 4, Issue 5, September-October 2026
CrossRef DOI: 10.62127/aijmr.2026.v04i05.1525

निर्द्धनयात्रिणां स्थानं नास्ति। मम हृदयात् शीतलनिःश्वासो बहिर्गतः। अहं चीत्कृतवान् इदं शतवारं सत्यम्, अयम् अतिथिः मम देवता-देशः मम प्रियभूमिः भारतं नास्ति। भवतु नाम अयं इंल्याण्ड आमेरिकादेशो वा भवेत्। किन्तु भारतं नहि।

अन्ततः भागीरथी के पावन तट पर श्री कृष्ण गोविन्द हरे मुरारे की सुरम्य मधुमय स्वर-लहरी मानो मृतप्रायः नायक में जीवन का संचार कर देती है। नायक विश्व-बन्धुत्व और विश्व- भ्रातृत्व की भावना में आपादमस्तक रससिक्त हो जाता है। यथा- अहो! उदात्तमहाभारतीयभावना। क्वचित् आर्यर्षिः युगपदावाहनं करोति देशस्य परमपावननदीनाम्। सम्मोहितं मनः। प्राणाः पुलकिताः। मम बहुदिनेभ्योऽन्विष्टं द्रव्यं प्राप्तं किम्घ् विषादा निर्गच्छति। इयम् इयमावाहनी रागिणी मम जन्मभूमेः परिचितस्वरः। पुनः विदेशप्रत्यागमनभावनां परित्यज्य अहं निश्चिता जाता यत्. मदीया शेषचिता पाश्चात्यभूमौ न ज्वलिष्यति। नेत्राभ्यां निद्रा चोरिता। हठात् कस्यापि सुमधुरध्वनिः मनः प्राणान् आमादयति। हृदयमानन्दपूरितं भवति। एषा हि मम प्रतीक्षा आसीत् खलु। इयममीयमधुमयी स्वरलहरी।

अन्ततः कथानायक फीर विदेश नहीं लौटता और इधर ऋषिकूल्या नदी के तीर पर बस जाता है निश्चित मन से। यथा- अधुना ऋषिकुल्यातीरे एकस्मिन् क्षुद्रकुटीरे निवसामि। पुनश्च जीवनस्य कापि महत्त्वाकांक्षा मां जन्मभूमेः दूरं नेतुं न शक्नुयात्। पत्नीपुत्रादीनां शतशतप्रार्थनाद्वाराऽपि अहं पाश्चात्यभूमिं प्रत्यागन्तुं न पारयामि कश्चन प्रकृतः हिन्दुरिव प्रार्थये केवलम् त्वत्तीरे वसतस्त्वदम्बुपिबतस्तद्वीचिषु प्रेक्षत। स्वन्नाम स्मरतस्त्वदर्पितदृशः स्यान्मे शरीरव्ययः।

अकथा एक पुरुष और स्त्री की प्रणय कथा है। पति-पत्नी बनाने वाली सामाजिक प्रथा ने उन दोनों को जोड़ दिया है। वे रूढ़िबद्ध परम्पराओं में जीते हैं, परन्तु अनजाने में उन्होंने एक साझे का जीवन वरण किया है। एक सत् आस्था में दोनों जीते हैं। यह प्रेमकथा अभिजात प्रेम कथा से भिन्न है। इसमें लोक-परम्परा का उद्दाम रूमानी आवेग नहीं है। यह प्रेम निम्नवर्गीय रोजमर्रा की जिन्दगी में सहभागिता के रूप में प्रकट हुआ है।

कथानायिका एक निम्नवर्गीय गृहसेविका है। एक दिन वह आकर मालकिन को अपनी दुःख की बात बताती है। मालकिन कहती है कि ऐसे हरदिन मद पीकर जो पिटता है और गालि देता है ऐसे मर्द को क्यों नहीं छोड देती। तब तुरन्त वह बताती कि हम लोगों का जीवन ही ऐसा है- किं वावुः त्वयि न तर्जयति, गालिः न ददाति, क्रोधं न प्रकाशयति, तथा मनोजपिता क्रोधं मयि हस्तेन वेदयति। किन्तु, कथयतु भवती किं वावुं त्यक्ष्यति तस्याः अकथा प्रतिवाक् प्रीतिस्निग्धा आसीत्। अक्षरशोऽनुरञ्जिताऽनुरागःए दूरस्थपथिको विरागः। तथा किन्तु हासमुखेन अहमुत्तरितवती, यद्यहं वावुं त्यक्ष्यामि, किं तं साक्षात् कापि स्वीक्रियेत विवाहाय न तवजनेषु तथा नास्ति। साक्षान्नीडरचनं शक्तमेव सदा। दिनद्वयेन कापि पक्षिणी गृहं निर्मापयेत्। एषा तु हस्तपदच्छेदिका कथा जाता। का वा कथा अस्मज्जनानाम्। अत्र अकथाः एव सर्वाः।अस्माकं ग्रामस्य का वा गर्जनंएतर्जनं प्रहारं वा न सहते। अस्माकं जीवनस्वाहाधारायां तदेव प्राप्यम्। स्वामीगुरुगर्जनेषु अपि लक्ष्यते मूर्त्तिमती प्रीतिः। तथापि जीवनं प्रेमपुष्टम्ए प्रहारमपि तत्र पुष्पायते। प्रहारसहं जीवनबन्धनं द्रढीयते।[7]

किसी महात्मा के उपदेश से जब उसका पति मद्यपान छोड देता है और मारना गालि देना वन्द कर देता है तो उसको यह अस्वाभाविक लगता है। वह मालिकिन को अपने घर को लेकर आती है। मगर वहां तो सव कुछ

Advanced International Journal of Multidisciplinary Research
E-ISSN: 2584-0487
editor@aijmr.com
Volume 4, Issue 5, September-October 2026
CrossRef DOI: 10.62127/aijmr.2026.v04i05.1525

स्वाभाविक ही था। जव वह उठकर उसको मारने लगता है, तब उसे सव कुछ पहले जैसा लगता। भले यहां कोई रुमानी आवेग नहीं है फीर भी रोजमर्रा जिन्देगी का लडना, झगडना, सुख दुःख से भरा पडा है। जीवन की अनकही अकथा ही यहां कथा बन जाती है।

संदर्भ सूची:

1. गङ्गे च यमुने चैव कथाकारः नारायणदाशः प्रकाशिका. लोकभाषाप्रचारसमितिः, सरस्वतीविहार वरपदा, भद्रक, ओडिशा 2001।
2. गङ्गे च यमुने चैव कथाकारः नारायणदाशः पृ. 8।
3. गङ्गे च यमुने चैव कथाकारः नारायणदाशः पृ. 17।
4. गङ्गे च यमुने चैव कथाकारः नारायणदाशः पृ. 19।
5. गङ्गे च यमुने चैव कथाकारः नारायणदाशः पृ. 18।
6. गङ्गे च यमुने चैव कथाकारः नारायणदाशः पृ. 20।
7. गङ्गे च यमुने चैव कथाकारः नारायणदाशः पृ. 21।